

राधा प्रसाद सिंह

1959

बनाम

7 सितंबर

गजाधर सिंह एवं अन्य

(एस. आर. दास, मुख्य न्यायाधीश, एम. हिदायतुल्लाह तथा के. सी. दास गुप्ता, न्यायमूर्तिगण)

अपीलीय न्यायालय - विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्यात्मक निष्कर्ष को परिवर्तित करने की शक्ति - साक्षी की विश्वसनीयता का प्रश्न - नियम।

यद्यपि यह सुस्थापित है कि अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायाधीश द्वारा दिए गए तथ्यात्मक निष्कर्ष में हल्के रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जिसे साक्षियों के आचरण का अवलोकन करने तथा उन्हें सुनने का अवसर प्राप्त था, तथापि इसका यह अर्थ नहीं है कि तथ्यों पर अपील की सुनवाई करने वाला अपीलीय न्यायालय ऐसे निष्कर्ष को कभी परिवर्तित नहीं कर सकता है। जहाँ किसी तथ्यात्मक प्रश्न पर निर्णय अभिलेख पर उपलब्ध विषयों के निष्पक्ष विचार पर निर्भर करता है तथा अपीलीय न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि महत्वपूर्ण विचारणीय बिंदुओं को विचारण न्यायाधीश द्वारा संज्ञान में नहीं लिया गया तथा समुचित रूप से मूल्यांकित नहीं किया गया, और ऐसे विचारणीय बिंदु स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि विचारण न्यायाधीश द्वारा ग्रहण किया गया दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण है, वहाँ ऐसे निष्कर्ष को परिवर्तित करना उसका कर्तव्य है, भले ही उसमें उन साक्षियों पर अविश्वास करना सम्मिलित हो जिन पर विचारण न्यायालय द्वारा विश्वास किया गया था। पुनः, जहाँ विचारण न्यायाधीश साक्षियों की विश्वसनीयता अथवा उनके कथन की संभावना से संबंधित महत्वपूर्ण विचारणीय बिंदुओं का समुचित मूल्यांकन अथवा संज्ञान लेने में चूक करता है, जो विपरीत दिशा की ओर संकेत करते हैं, वहाँ विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को परिवर्तित करना अपीलीय न्यायालय का कर्तव्य है।

यदि किसी तथ्यात्मक प्रश्न का निर्धारण केवल साक्षियों की विश्वसनीयता पर निर्भर नहीं

करता है, बल्कि सिद्ध तथ्यों से संभावनाओं के विचार के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष का प्रश्न है, तब अपीलीय न्यायालय उसी स्थिति में होता है जिस स्थिति में विचारण न्यायालय होता है तथा वह उसके निष्कर्षों को परिवर्तित करने के लिए स्वतंत्र है।

शुनमुगराया मुदलियार बनाम मणिकका मुदलियार, (1909) एल.आर. 36 आई.ए. 185; कॉग्लन बनाम कंबरलैंड, (1898) 1 सी.एच. 704; वाट (थोमा) बनाम थॉमस, (1947) 1 ऑल ई.आर. 582; बॉनमैक्स बनाम ऑस्टिन मोटर कंपनी लिमिटेड, (1955) 1 ऑल ई.आर. 326; सरजू परसाद बनाम राजा ज्वालेश्वरी प्रताप नारायण सिंह, (1951) आई.एल.आर. 43 कलकत्ता 833 तथा लालजी मोहम्मद बनाम गेल्डर, [1950] एस.सी.आर.781, पर अवलंबन किया गया।

फलस्वरूप, जहाँ, जैसा कि वर्तमान वाद में है, वादी ने पूर्वक्रय के लिए वाद दायर किया तथा निर्धारण हेतु प्रश्न तथ्य का था, अर्थात् क्या वादी ने तलब-ए-मुवासिबत तथा तलब-ए-इशहाद की आवश्यक औपचारिकताओं का पालन किया था, और विचारण न्यायालय ने उसके साक्षियों पर विश्वास किया, न कि इसलिए कि वह उनके आचरण से प्रभावित था, तथा उच्च न्यायालय ने अपील में वाद की संभावनाओं के आलोक में उन पर अविश्वास किया और विचारण न्यायालय के निर्णय को परिवर्तित कर दिया।

अभिनिर्धारित किया गया कि, यह तर्क देना सही नहीं था कि जिस प्रकार उच्च न्यायालय ने वाद का दृष्टिकोण अपनाया वह त्रुटिपूर्ण था अथवा उसका निर्णय न्यायोचित नहीं था।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1954 की दीवानी अपील संख्या 19

पटना उच्च न्यायालय द्वारा मूल डिक्री अपील संख्या 116/1947 में पारित दिनांक 8 अप्रैल, 1949 के निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध अपील, जो बेगूसराय के अवर न्यायाधीश द्वारा 1944/45 का स्वत्व वाद संख्या 14/14 में पारित दिनांक 28 फरवरी, 1947 के निर्णय एवं डिक्री से उत्पन्न हुई ।

एल.के. झा तथा बी.के. सिन्हा, अपीलकर्ता की ओर से ।

जी.एस. पाठक, बी. सेन, बी.के. सरन तथा आर.सी. प्रसाद, उत्तरदाता संख्या 1 की ओर से।

एस.डी. सेखरी, उत्तरदाता संख्या 3 तथा 4 की ओर से ।

7 सितंबर 1959, न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया

दास गुप्ता, न्यायमूर्ति - यद्यपि इस पूर्वक्रय वाद में प्रारंभ में कुछ तथ्य के तथा कुछ विधि के प्रश्न उठाए गए थे, तथापि विचारण हेतु मुख्य प्रश्न, पटना उच्च न्यायालय के उस निर्णय के विरुद्ध इस अपील में, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय अर्थात् मुंगेर के अवर न्यायाधीश द्वारा दी गई पूर्वक्रय की डिक्री को परिवर्तित किया गया था, वह प्रश्न है जिस पर उच्च न्यायालय ने अपने परिवर्तन संबंधी निर्णय को आधारित किया । वह प्रश्न यह है कि क्या पूर्वक्रय के अधिकार का प्रयोग करने हेतु आवश्यक औपचारिकताएँ समुचित रूप से संपन्न की गई थीं । मुद्दा संख्या 9, जिसमें यह प्रश्न उठाया गया था, निम्नलिखित शब्दों में है :-

"क्या वादी ने विधि द्वारा अपेक्षित तलब-ए-मुवासिबत तथा तलब-ए-इशहाद की औपचारिकताएँ संपन्न की थीं ?"

वादी राधा प्रसाद सिंह ने वादपत्र की अनुसूची-बी में वर्णित 5 मर्दों की संपत्तियाँ के संबंध में यह पूर्वक्रय वाद दायर किया, जिन्हें कुछ अन्य संपत्तियों के साथ द्वितीय पक्ष की प्रतिवादी मुसम्मामत जोगेश्वरी कुमारी उर्फ जगेश्वरी कुमारी, स्वर्गीय बाबू गंगा प्रसाद सिंह की विधवा तथा बाबू नरसिंह प्रसाद सिंह की पुत्री द्वारा 18 नवंबर, 1943 को मोकामा में निष्पादित तथा 23 नवंबर, 1943 को मुंगेर में निबंधित दस्तावेज के माध्यम से विक्रय किया गया था ।

विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वादी यह सिद्ध करने में असफल रहा कि वह अनुसूची-बी की मद संख्या 2 के संबंध में सह-हिस्सेदार था । अन्य 4 मर्दों की संपत्तियों के

संबंध में उसने अभिनिर्धारित किया कि वादी सह-हिस्सेदार था तथा जैसा कि पूर्व में इंगित किया गया है, उसने इन 4 मर्दों के संबंध में वादी के पक्ष में पूर्वक्रय की डिक्री स्वीकृत की गई

विक्रय विलेख प्रथम पक्ष के प्रतिवादी गजाधर सिंह के पक्ष में है । तथापि, अब यह विवादित नहीं है कि गजाधर सिंह मात्र बेनामीदार था तथा इस विलेख के वास्तविक क्रेता बाबू लक्ष्मी प्रसाद सिंह, उनका पुत्र सत्य नारायण सिंह तथा अन्य थे ।

यह विवाद उठाया गया कि मौजा मझौल किलान श्री राम का 4 आना 5 गंडा कुछ हिस्सा विक्रय किया गया था अथवा विक्रेता का संपूर्ण 8 आना कुछ हिस्सा विक्रय किया गया था। दोनों अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वादी का मूल मामला, कि मझौल किलान श्री राम का 4 आना 5 गंडा कुछ हिस्सा विक्रय किया गया था, सही नहीं है तथा वास्तव में 8 आना कुछ हिस्सा, अर्थात् इस संपत्ति में विक्रेता का संपूर्ण हित, विलेख द्वारा विक्रय किया गया था, किंतु विक्रय विलेख के निबंधन के पश्चात् उसके साथ छेड़छाड़ की गई तथा जालसाजी के कृत्य द्वारा 8 आना कुछ हिस्से को कपटपूर्वक 4 आना 5 गंडा में परिवर्तित कर दिया गया। प्रतिवादी के लिखित कथन में यह अभिवचन किए जाने के पश्चात् कि इस मौजा का 8 आना कुछ गंडा विक्रय किया गया था, न कि अनुसूची-बी में उल्लिखित 4 आना कुछ गंडा, वादी ने वादपत्र में संशोधन हेतु प्रार्थना की तथा प्राप्त किया, जिसके द्वारा इस मौजा के 8 आना कुछ हिस्से के संबंध में पूर्वक्रय हेतु वैकल्पिक प्रार्थना की गई। इस संशोधन के अभाव में यह स्पष्ट है कि पूर्वक्रय हेतु प्रार्थना स्वीकृत नहीं किया जा सकता था, क्योंकि वह केवल आंशिक पूर्वक्रय हेतु थी, जबकि यह अभिनिर्धारित हो चुका था कि 8 आना कुछ गंडा विक्रय किया गया था, न कि 4 आना कुछ गंडा। इसलिए एक प्रश्न यह भी उठाया गया कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा संशोधन समुचित रूप से स्वीकृत किया गया था। यह प्रश्न कि जैसा वाद दायर किया गया था वह आंशिक पूर्वक्रय हेतु था, एक अन्य दृष्टिकोण से भी उठाया गया, अर्थात्

यद्यपि इस मौजा मझौल किलान श्री राम का विक्रय सभी ग्राम असली मय दाखिली, अर्थात् मूल सहित आश्रित ग्रामों का था, तथापि इस वाद में दाखिली ग्रामों के संबंध में पूर्वक्रय हेतु कोई प्रार्थना नहीं की गई है। तथापि, जैसा कि पूर्व में इंगित किया गया है, विवाद का मुख्य प्रश्न यह था कि क्या विधि द्वारा अपेक्षित आवश्यक औपचारिकताएँ, अर्थात् तलब-ए-मुवासिबत तथा तलब-ए-इशहाद, विधि के अनुसार संपन्न की गई थीं।

जहाँ तक इसका संबंध है, वादी का मामला यह है कि उसे इस विक्रय की जानकारी उसके सह-हिस्सेदार जोगेश्वरी द्वारा पहली बार 2 जनवरी, 1944 को लगभग 11 बजे पूर्वाह्न में हुई, जब मझौल निवासी जदुनाथ सिंह ने उसे इसकी सूचना दी और उसने तत्क्षण कुछ व्यक्तियों की उपस्थिति में तलब-ए-मुवासिबत की औपचारिकता पूर्ण की तथा इसके थोड़े ही पश्चात् वह तौजी संख्या 1130, 4201 तथा 1136 की संपत्तियों पर और साथ ही मौजा बुजुर्गाबाद गया तथा वहाँ तलब-ए-इशहाद संपन्न किया, तत्पश्चात् वह 3 जनवरी, 1944 को क्रेता गजाधर सिंह के मटिहानी स्थित निवास पर गया और पुनः तलब-ए-इशहाद संपन्न किया; तथा उसी दिन वह विक्रेता के निवास हेतु रवाना हुआ और वहाँ 4 जनवरी, 1944 को तलब-ए-इशहाद संपन्न किया।

बचाव पक्ष का तर्क यह था कि ऐसी किसी औपचारिकता के संपन्न किए जाने की कहानी पूर्णतः असत्य है तथा वास्तव में वादी को इस विक्रय की जानकारी 2 जनवरी, 1944 से बहुत पूर्व से थी, क्योंकि वह उन्हीं संपत्तियों के क्रय हेतु प्रतिस्पर्धी बोलीदाता था। प्रस्तावित विक्रय की डुगडुगी पिटवाकर उद्धोषणा किए जाने की विस्तृत कथा बिंदेश्वरी द्वारा तथा विक्रय में वादी के संपत्ति प्राप्त करने के प्रयास का उल्लेख प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन में किया गया था और उसके साक्षियों द्वारा उसे सिद्ध करने का प्रयास किया गया था। विचारण न्यायालय ने इस बिंदु पर प्रतिवादी की कहानी पर विश्वास नहीं किया। उसने बचाव पक्ष के इस अभिकथन को भी अस्वीकार कर दिया कि विक्रय विलेख में मझौल किलान श्री राम में विक्रय किए गए हिस्से के

विवरण को 8 आना कुछ गंडा से 4 आना कुछ गंडा में परिवर्तित करके की गई जालसाजी के लिए वादी स्वयं उत्तरदायी था। इन निष्कर्षों के आधार पर उसने अभिनिर्धारित किया कि वादी का वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं था

इसके पश्चात् इस प्रश्न के विचार पर आते हुए कि क्या वादी को प्रथम प्रतिवादी के पक्ष में हुए विक्रय की जानकारी, कथित रूप से, पहली बार 2 जनवरी, 1944 को जदुनाथ से हुई थी, विद्वान न्यायाधीश ने इस बिंदु पर वादी तथा जदुनाथ द्वारा दिए गए साक्ष्य को स्वीकार किया और अभिनिर्धारित किया कि वादी का यह मामला सत्य था कि उसे पहली बार उसी दिन जानकारी प्राप्त हुई थी। उन्होंने आवश्यक औपचारिकताओं के विधिवत् संपन्न किए जाने के संबंध में वादी के साक्ष्य को भी स्वीकार किया।

न्यायालय के निर्णय हेतु उत्पन्न अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि क्या वादी की यह कहानी सत्य है कि उसे विक्रय की जानकारी प्रथम बार 2 जनवरी, 1944 को जदुनाथ से हुई थी। विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह सत्य है। इस बिंदु पर उच्च न्यायालय भिन्न निष्कर्ष पर पहुँचा। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों का मत था कि साक्षी जदुनाथ का साक्ष्य पूर्णतः अस्वीकार्य है तथा वादी का यह साक्ष्य कि उसे कथित विक्रय की जानकारी 2 जनवरी, 1944 को हुई थी, स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह इंगित करने के पश्चात् कि वादी के इस दावे का सम्पूर्ण आधार कि उसने तलब-ए-मुवासिबत तथा तलब-ए-इशहाद की विधियाँ सम्पन्न की थीं, निराधार था, उन्होंने उक्त विधियों के सम्पादन से संबंधित साक्ष्य का परीक्षण किया और अभिनिर्धारित किया कि यह साक्ष्य भी स्वीकार्य नहीं था।

हमारे समक्ष विवादित प्रश्न इस प्रकार शुद्ध तथ्यात्मक प्रश्न है, अर्थात् क्या वादी को विक्रय की जानकारी पहली बार 2 जनवरी, 1944 को हुई थी और तत्पश्चात् उसने तलब-ए-मुवासिबत तथा तलब-ए-इशहाद की औपचारिकताएँ संपन्न की थीं। अपील के समर्थन में उपस्थित श्री झा

द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क यह है कि इस तथ्यात्मक प्रश्न पर विचार करते समय उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न को पूर्णतः त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण से देखा और इस बिंदु पर विचारण न्यायालय के निर्णय को परिवर्तित करने में न्यायोचित नहीं था।

प्रथम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा एक प्रकार से पूर्वनिर्णीत तथ्यात्मक प्रश्न का निर्णय करते समय अपीलीय न्यायालय का समुचित दृष्टिकोण क्या होना चाहिए, यह प्रश्न अनेक बार न्यायालयों के विचाराधीन रहा है, यद्यपि इस विषय में व्यक्त मत एकरूप नहीं रहे हैं। कुछ मामलों में इस बात के महत्व पर बल दिया गया है कि जब अपील तथ्यों पर हो, तब अपीलीय न्यायालय स्वयं तथ्यात्मक प्रश्न का निर्णय करे, यद्यपि यह स्मरण रखते हुए कि उसे ऐसा हल्के रूप से नहीं करना चाहिए क्योंकि उसे वह लाभ प्राप्त नहीं है जो विचारण न्यायाधीश को साक्षियों को देखने का प्राप्त था। अन्य मामलों में इस बात पर अधिक बल दिया गया है कि बाध्यकारी कारणों के अभाव में विचारण न्यायाधीश के तथ्यात्मक निष्कर्षों को परिवर्तित नहीं किया जाना चाहिए। सभी न्यायालयों ने सभी मामलों में उस नियम पर बल दिया है जिसका पालन अपीलीय न्यायालयों को स्वयं करना चाहिए: कि अपील पर बैठा न्यायाधीश, जिसे साक्षियों को देखने और सुनने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है, उसे उस विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों को परिवर्तित करने से पूर्व, जिसे वह अवसर प्राप्त था, दो बार नहीं बल्कि उससे भी अधिक विचार करना चाहिए। तथापि ऐसा कहना यह नहीं है कि अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय के तथ्यात्मक निष्कर्ष को कभी परिवर्तित नहीं करेगा। शुनमुगराया मुदलियार बनाम मणिक्का मुदलियार ⁽¹⁾ में लॉर्ड कॉलिन्स ने इंगित किया कि:

"उन न्यायाधीशों के लिए, जिन्होंने साक्षियों को देखा और सुना नहीं है, उन व्यक्तियों के तथ्यात्मक निष्कर्षों को स्वीकार करने से इंकार करना सदैव कठिन होता है जिन्होंने ऐसा किया है; किंतु यह कठिनाई अत्यधिक बढ़ जाती है जहाँ उन्हें सुनने वाले न्यायाधीश

ने यह मत बनाया हो कि न केवल संभावनाओं के संतुलन पर उनके निष्कर्ष असंगत हैं, बल्कि वे सत्यवादी साक्षी भी नहीं हैं।"

उसी निर्णय में लॉर्ड कॉलिन्स ने कॉग्लन बनाम कंबरलैंड ⁽¹⁾ के मामले में अपीलीय न्यायालय में रोल्स के मास्टर लिंडले द्वारा प्रदत्त निर्णय का अनुमोदनपूर्वक उल्लेख किया, जिसमें उक्त नियम की सीमाएँ इस प्रकार निरूपित की गई थीं:-

"यहाँ तक कि जहाँ अपील किसी तथ्यात्मक प्रश्न पर आधारित हो, वहाँ अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान में रखना होता है कि उसका कर्तव्य वाद की पुनः सुनवाई करना है, और न्यायालय को न्यायाधीश के समक्ष उपलब्ध सामग्री का, ऐसी अन्य सामग्री के साथ जिसका स्वीकार किया जाना वह निर्णय कर चुका हो, पुनर्विचार करना चाहिए। तत्पश्चात् न्यायालय को अपना स्वतंत्र मत बनाना चाहिए, अपीलित निर्णय की उपेक्षा किए बिना, बल्कि उसका सावधानीपूर्वक मूल्यांकन और विचार करते हुए; तथा यदि पूर्ण विचार के पश्चात् न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि निर्णय त्रुटिपूर्ण है, तो उसे परिवर्तित करने से संकोच नहीं करना चाहिए। जब, जैसा कि प्रायः होता है, बहुत कुछ उन साक्षियों की सापेक्ष विश्वसनीयता पर निर्भर करता है जिनका न्यायाधीश के समक्ष परीक्षण और प्रतिपरीक्षण हुआ है, तब न्यायालय उस महान लाभ से अवगत रहता है जो उन्हें देखने और सुनने में न्यायाधीश को प्राप्त हुआ है। लिखित बयान से साक्षियों की सापेक्ष विश्वसनीयता का सही आकलन करना प्रायः अत्यंत कठिन होता है, और जब यह प्रश्न उठता है कि किस साक्षी पर दूसरे की अपेक्षा विश्वास किया जाए; तथा वह प्रश्न उनके आचरण और व्यवहार पर निर्भर करता है, तब अपीलीय न्यायालय सदैव उस प्रभाव से निर्देशित होता है, और होना भी चाहिए, जो साक्षियों को देखने वाले न्यायाधीश पर पड़ा हो। किंतु स्पष्टतः ऐसे अन्य परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं, जो आचरण और व्यवहार से

पृथक हों, जिनसे यह प्रदर्शित हो सके कि कोई कथन विश्वसनीय है या नहीं; और ऐसी परिस्थितियाँ अपीलीय न्यायालय को इस बात के लिए न्यायोचित ठहरा सकती हैं कि वह न्यायाधीश से भिन्न मत रखे, यहाँ तक कि उस तथ्यात्मक प्रश्न पर भी जो उन साक्षियों की विश्वसनीयता पर आधारित हो जिन्हें अपीलीय न्यायालय ने देखा न हो।"

लगभग यही दृष्टिकोण लॉर्ड थेंकरटन द्वारा वाट (या थॉमस) बनाम थॉमस ⁽²⁾ में व्यक्त किया गया था:

"I. . जहाँ किसी तथ्यात्मक प्रश्न का विचारण किसी न्यायाधीश द्वारा जूरी के बिना किया गया हो और न्यायाधीश द्वारा स्वयं को गलत विधिक निर्देश देने का कोई प्रश्न न हो, वहाँ अपीलीय न्यायालय, जो मुद्रित साक्ष्य के आधार पर भिन्न निष्कर्ष पर पहुँचने का इच्छुक हो, ऐसा तब तक नहीं करेगा जब तक वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि साक्षियों को देखने और सुनने के कारण विचारण न्यायाधीश को जो लाभ प्राप्त हुआ, वह उसके निष्कर्षों की व्याख्या या औचित्य सिद्ध करने हेतु पर्याप्त नहीं हो सकता था। II. अपीलीय न्यायालय यह दृष्टिकोण अपना सकता है कि साक्षियों को देखे या सुने बिना वह मुद्रित साक्ष्य के आधार पर किसी संतोषजनक निष्कर्ष पर पहुँचने की स्थिति में नहीं है। III. अपीलीय न्यायालय, या तो इस कारण कि विचारण न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारण संतोषजनक नहीं हैं, अथवा क्योंकि साक्ष्य से स्पष्ट रूप से ऐसा प्रतीत होता है, इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि उसने साक्षियों को देखने और सुनने के अपने अवसर का समुचित लाभ नहीं उठाया, और तब वह विषय अपीलीय न्यायालय के लिए पूर्णतः विचारार्थ खुल जाता है। यह स्पष्ट है कि साक्षियों को देखने और सुनने का महत्व तथा मूल्य वाद के प्रकार तथा संभवतः संबंधित विशिष्ट वाद के अनुसार परिवर्तित होगा।"

इन टिप्पणियों का अनुमोदनपूर्वक उल्लेख लॉर्ड रीड द्वारा बॉनमैक्स बनाम ऑस्टिन मोटर कंपनी

लिमिटेड⁽¹⁾ में किया गया था। (लालजी महोमद बनाम गर्ल्डर⁽²⁾ में न्यायमूर्ति मुखर्जी की टिप्पणियाँ भी देखें।)

विचारण न्यायालय द्वारा तथ्यात्मक प्रश्नों पर दिए गए निर्णयों के प्रति अपीलीय न्यायालय के समुचित दृष्टिकोण के इस प्रश्न पर इस न्यायालय द्वारा सरजू परसाद बनाम राजा ज्वालेश्वरी प्रताप नारायण सिंह⁽³⁾ में विचार किया गया था। न्यायमूर्ति मुखर्जी ने न्यायालय का निर्णय देते हुए निम्नलिखित अभिव्यक्त किया:-

"ऐसे मामलों में अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान में रखना होता है कि उसे वह लाभ प्राप्त नहीं है जो विचारण न्यायाधीश को साक्षियों को अपने समक्ष देखकर तथा न्यायालय में उनके कथन की शैली का अवलोकन करके प्राप्त हुआ था। इसका निश्चित रूप से यह अर्थ नहीं है कि जब तथ्यों पर अपील हो, तब अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायाधीश द्वारा दिए गए तथ्यात्मक निष्कर्ष को परिवर्तित करने में सक्षम नहीं है। नियम यह है—और यह केवल व्यवहार का नियम है—कि जब किसी विवादित मुद्दे पर पक्षकारों के मौखिक साक्ष्य में विरोध हो और निर्णय साक्षियों की विश्वसनीयता पर निर्भर करता हो, तब जब तक किसी विशिष्ट साक्षी के साक्ष्य में ऐसा कोई विशेष तत्व न हो जो विचारण न्यायाधीश के ध्यान से छूट गया हो, अथवा उसके मत को कि विश्वसनीयता किस ओर है, विस्थापित करने हेतु पर्याप्त असंभाव्यता का संतुलन न हो, अपीलीय न्यायालय को तथ्यात्मक प्रश्न पर विचारण न्यायाधीश के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।"

हमारे मत में विधिक स्थिति यह है कि जब तथ्यों पर अपील होती है, तब अपीलीय न्यायालय का यह अधिकार और कर्तव्य है कि वह इस बात पर विचार करे कि तथ्यात्मक प्रश्न पर उसका निर्णय क्या होना चाहिए; किंतु अपना स्वतंत्र निर्णय करते समय उसे यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह मुद्रित अभिलेख को देख रहा है और उसे साक्षियों को देखने का अवसर

प्राप्त नहीं हुआ है तथा उसे विचारण न्यायाधीश के इस निष्कर्ष को कि किसी विशिष्ट साक्षी के साक्ष्य पर विश्वास किया जाना चाहिए अथवा नहीं किया जाना चाहिए, हल्के रूप से अस्वीकार नहीं करना चाहिए, विशेषतः जब ऐसा निष्कर्ष न्यायालय में साक्षी के आचरण के अवलोकन पर आधारित हो। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि केवल इसलिए कि अपीलीय न्यायालय ने साक्षियों को न देखा है और न सुना है, वह किसी भी दशा में विचारण न्यायाधीश के निष्कर्षों को, यहाँ तक कि विश्वसनीयता के प्रश्न पर भी, परिवर्तित नहीं करेगा, यदि ऐसा प्रश्न अभिलेख पर उपलब्ध विषयों के निष्पक्ष विचार पर निर्भर करता हो। जब अपीलीय न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि विश्वसनीयता के प्रश्न से संबंधित महत्वपूर्ण विचारणीय बिंदुओं को विचारण न्यायाधीश द्वारा संज्ञान में नहीं लिया गया अथवा समुचित रूप से मूल्यांकित नहीं किया गया और ऐसे विचारणीय बिंदु, जिनमें साक्षियों द्वारा दी गई कथा की संभाव्यता का प्रश्न भी सम्मिलित है, स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि विचारण न्यायाधीश द्वारा ग्रहण किया गया दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण है, तब अपीलीय न्यायालय को ऐसे प्रश्नों पर विचारण न्यायाधीश के निष्कर्षों को परिवर्तित करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। जहाँ प्रश्न न्यायालय में देखे गए साक्षियों के आचरण पर पूर्णतः आधारित विश्वसनीयता का न होकर सिद्ध मूल तथ्यों से किसी तथ्य के निष्कर्ष निकालने का हो, वहाँ अपीलीय न्यायालय उतनी ही उपयुक्त स्थिति में होता है जितना विचारण न्यायाधीश, और यदि वह यह समझता है कि विचारण न्यायाधीश द्वारा निकाला गया निष्कर्ष न्यायोचित नहीं है, तो वह निष्कर्षों को परिवर्तित करने के लिए स्वतंत्र है।

अब वर्तमान वाद पर आते हुए हम पाते हैं कि विचारण न्यायाधीश ने जदुनाथ तथा वादी को देखकर और सुनकर 2 जनवरी, 1944 को लगभग 11 बजे पूर्वाह्न में जदुनाथ द्वारा वादी को विक्रय की सूचना दिए जाने के संबंध में उनके साक्ष्य पर विश्वास किया था। तथापि, ऐसा प्रतीत नहीं होता कि विद्वान विचारण न्यायाधीश ने अपना निष्कर्ष इस आधार पर निकाला कि इन

साक्षियों के आचरण ने उनकी विश्वसनीयता के संबंध में उनके मन पर अनुकूल प्रभाव उत्पन्न किया था।

वादी तथा जदुनाथ के साक्ष्य का परीक्षण करते समय यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि वादी का मामला यह है कि 2 जनवरी, 1944 को उसे कुछ सूचना प्राप्त होने पर उसने औपचारिकताएँ संपन्न की थीं। यह उसका मामला नहीं है कि औपचारिकताएँ किसी अन्य तिथि को संपन्न की गई थीं। अतः यदि 2 जनवरी, 1944 को सूचना संप्रेषण की कहानी स्थापित नहीं होती है, तो वादी का संपूर्ण मामला विफल हो जाएगा।

इस बिंदु पर जदुनाथ का साक्ष्य निम्नलिखित था:

"2-1-44 को मैंने मंझौल स्थित उनके घर पर राधा बाबू से कहा कि मघरावाली जोगेश्वरी कुमारी ने अपनी मिलिकयत मटिहानी के गजाधर राय को बेच दी है, यह लगभग 11 बजे पूर्वाह्न की बात है। यह सुनकर राधा चकित हो गए और खड़े होकर कहा:

'जो जो जायदाद बाबू गजाधर सिंह के हाथ (मघरावाली मुसम्मात जगेश्वरी कुमारी फिर कहती हैं) जो जो जायदाद बाबू गजाधर सिंह का हाथ बेचा है उसके खरीदने का हक मेरा। हम खरीदा, हम खरीदा, हम खरीदा। तलाब मोवासिबत करते हैं। बाबू जगदंबा प्रसाद और बाबू नारायण प्रसाद गवाही रहिए। मुझे चित्राल के एक व्यक्ति से, जो मटिहानी से 1 कोस दूर है, यह ज्ञात हुआ कि गजाधर का एक विवाह योग्य पौत्र है।'"

इस संबंध में जगदंबी प्रसाद के साक्ष्य का उल्लेख भी किया जाना चाहिए:—

"2-1-44 को मैं प्रातः 10-30 बजे वादी के घर गया था। उस समय समस्तीपुर के एक अधिवक्ता बाबू नारायण प्रसाद सिंह वादी के घर पर थे... जदुनाथ सिंह ने राधा प्रसाद से कहा कि मघरा की मुसम्मात जगेश्वरी कुमारी ने मंझौल स्थित अपनी संपत्ति मटिहानी

के गजाधर सिंह को बेच दी है। जदुनाथ सिंह द्वारा यह कहते ही राधा प्रसाद सिंह चकित हो गए, खड़े हुए और कहा:"

'मुझे इस संपत्ति को खरीदने का अधिकार है। मैंने खरीद लिया; मैंने खरीद लिया; मैंने खरीद लिया। आप जगदंबा प्रसाद सिंह, आप नारायण प्रसाद सिंह और आप जदुनाथ सिंह, इस तथ्य के साक्षी रहें।' उसने ये शब्द तीन बार कहे।"

यह निर्णय करते समय कि क्या जदुनाथ से प्राप्त सूचना वादी को प्राप्त प्रथम सूचना थी, विचारण न्यायालय को अनिवार्यतः इस प्रश्न पर विचार करना था कि क्या यह कहानी सत्य थी कि जदुनाथ को विक्रय की जानकारी हुई और वह यह सूचना 2 जनवरी, 1944 को लगभग 11 बजे पूर्वाह्न वादी को देने आया। इस बिंदु पर निर्णय पर पहुँचने के लिए उसके लिए यह विचार करना आवश्यक था कि जदुनाथ के गजाधर के घर वर की तलाश में जाने की कहानी कितनी संभाव्य थी और वहाँ गजाधर सिंह द्वारा उसे विक्रय की सूचना दिए जाने की कहानी कितनी संभाव्य थी, तथा यह भी कि अपने ग्राम लौटने के तुरंत पश्चात् वह स्वयं यह दायित्व लेकर वादी के घर सूचना देने जाएगा, इसकी संभाव्यता क्या थी; साथ ही यह भी कि वादी ने इस सूचना पर जिस प्रकार प्रतिक्रिया दी, उसकी कहानी कितनी संभाव्य थी, तथा विसंगति का प्रश्न भी विचारणीय था। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि विद्वान विचारण न्यायाधीश ने इन विषयों में से किसी को भी विचार में लिया। जदुनाथ की विश्वसनीयता के संबंध में उन्होंने केवल इतना कहा कि उसके साक्ष्य की इस आधार पर आलोचना की गई थी कि वह सत्य नारायण सिंह के पूर्वजों के विरुद्ध वादी द्वारा दायर पूर्ववर्ती वाद में वादी का साक्षी था और उनके मत में यह जदुनाथ सिंह के साक्ष्य को अस्वीकार करने का वैध आधार नहीं था। हम विद्वान न्यायाधीश से सहमत हैं कि मात्र यह तथ्य कि जदुनाथ लगभग 33 वर्ष पूर्व सत्य नारायण सिंह के पूर्वजों के विरुद्ध वादी द्वारा दायर पूर्ववर्ती वाद में वादी का एक साक्षी था, अपने आप में उसकी गवाही अस्वीकार

करने का वैध कारण नहीं होगा। तथापि, यह तथ्य कि उसकी गवाही अस्वीकार करने का यह वैध कारण नहीं था, न्यायालय को इस कर्तव्य से मुक्त नहीं करता कि वह साक्षी की गवाही को संभाव्यता की कसौटी पर परखे। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायमूर्तिगण ने उस कसौटी को लागू किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जदुनाथ सत्यवादी साक्षी नहीं था।

यह स्पष्टतः ऐसा मामला है जहाँ लॉर्ड थैंकरटन द्वारा प्रयुक्त यह कथन लागू होना चाहिए कि विचारण न्यायाधीश ने साक्षियों को देखने और सुनने के अपने अवसर का समुचित लाभ नहीं उठाया था और तब विषय अपीलीय न्यायालय के लिए पूर्णतः विचारार्थ खुल जाता है। यहाँ ऐसा साक्षी था जिसे पूर्णतः स्वतंत्र नहीं माना जा सकता था। क्योंकि उसके अपने कथनानुसार, वह वर की असफल खोज में की गई, जिसे श्रमसाध्य यात्रा माना जा सकता है, यात्रा के पश्चात् वादी के घर जाने का कष्ट केवल इस उद्देश्य से उठाता है कि वह वादी को ऐसे विषय की सूचना दे जिसमें उसका स्वयं का कोई हित नहीं था—ऐसा साक्षी जो, यद्यपि अनेक वर्ष पूर्व, उसी व्यक्ति द्वारा दायर पूर्वक्रय वाद में उपस्थित हो चुका था। इन तथ्यों के कारण यह आवश्यक था कि न्यायाधीश केवल उसे देखकर यह कहने से पूर्व कि वह सत्यवादी साक्षी है, उसके कथन का निकट परीक्षण करें। ऐसा परीक्षण स्पष्टतः अनुपस्थित है। उसके साक्ष्य को समग्र रूप से देखने पर हम पाते हैं कि उसकी कहानी यह है कि विवादित विक्रय की जानकारी प्राप्त होने के पश्चात् वह अपनी पुत्री के संबंध में उसके पौत्र के साथ विवाह प्रस्ताव के संबंध में पूछताछ करने हेतु प्रथम प्रतिवादी गजाधर के ग्राम मटिहानी स्थित घर गया और उसी प्रसंग में गजाधर ने उससे अपने क्रय के विषय में बात की। किंतु यह विचित्र है कि मुख्य परीक्षण में यह साक्षी सीधे 2 जनवरी, 1944 को वादी के घर आने तथा जोगेश्वरी द्वारा अपनी मिल्कियत गजाधर को विक्रय किए जाने की सूचना देने के अपने कथन पर आ गया, बिना यह बताए कि वह गजाधर के घर गया था, उसके जाने का उद्देश्य क्या था, गजाधर ने उसे किस प्रकार सूचना दी अथवा सूचना

का विस्तृत स्वरूप क्या था। प्रतिपरीक्षण में उसने उद्घाटित किया कि वह गजाधर के घर "बरतुहारी" के लिए गया था। हम उसके साक्ष्य में, चाहे मुख्य परीक्षण हो अथवा प्रतिपरीक्षण, व्यर्थ ही यह खोजते हैं कि गजाधर द्वारा उसे वास्तव में क्या सूचना दी गई थी।

इस संबंध में यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि अब यह विवादित नहीं है कि गजाधर का स्वयं इन संपत्तियों में कोई हित नहीं था और वह मात्र बेनामीदार था। यहाँ तक कि यदि गजाधर के इस कथन को भी विचार से पृथक कर दिया जाए कि वह इन लेन-देन के संबंध में पूर्णतः अनभिज्ञ था, तब भी न्यायालय के लिए यह विचार करना आवश्यक था कि यह कितनी संभाव्य बात थी कि गजाधर जदुनाथ को अपने द्वारा संपत्तियों के क्रय की असत्य कहानी बताएगा। यह तर्क दिया गया कि गजाधर ने ऐसा इसलिए किया ताकि वह इस आधार पर अधिक तिलक प्राप्त कर सके। जदुनाथ ने स्वयं तिलक संबंधी वार्ताओं के विषय में कुछ नहीं कहा है, किंतु महाबीर राय ने कहा है कि जब वह खेतों की ओर जा रहा था तब गजाधर ने उसे बुलाया और वहाँ उसने गजाधर को अधिक तिलक की मांग करते सुना, यह कहते हुए कि उसने हाल ही में मुसम्मात से मझौल स्थित संपत्तियाँ खरीदी हैं। जदुनाथ स्वयं यह नहीं कहता कि उसने महाबीर को गजाधर के घर पर देखा था। जदुनाथ का दावा है कि वह अपने एक नौकर के साथ उसके घर गया था। महाबीर ने उस नौकर की उपस्थिति का उल्लेख नहीं किया है। यह प्रश्न कि क्या महाबीर जैसा व्यक्ति, जो वादी के लिए पूर्णतः अपरिचित था, गजाधर द्वारा ऐसी बातचीत सुनने हेतु बुलाया जाता, न्यायालय द्वारा गंभीर विचार का विषय था। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि विद्वान विचारण न्यायाधीश ने इस पक्ष पर किंचित भी विचार किया हो। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायमूर्तिगण का मत था कि ऐसा कोई कारण नहीं था कि गजाधर स्वयं आगे बढ़कर जदुनाथ को यह सूचना दे कि उसने द्वितीय प्रतिवादी जोगेश्वरी की मिल्कियत खरीदी है। संभाव्यता के इस आकलन से असहमत होना कठिन है।

संभाव्यता के प्रश्न का इससे भी अधिक महत्वपूर्ण पक्ष वह था जो सूचना दिए जाने पर वादी की कथित प्रतिक्रिया की कहानी से संबंधित था। जदुनाथ तथा जगदंबी दोनों कहते हैं कि विक्रय की सूचना प्राप्त होने पर वादी चकित हो गया और तत्काल तलब-ए-मुवासिबत के वे शब्द उच्चारित किए जिनका पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। साधारण विवेक वाला व्यक्ति—वादी जैसे संपन्न तथा पूर्व वाद-विवाद के अनुभव वाले व्यक्ति की तो बात ही छोड़िए—ऐसी परिस्थिति में क्या करता? इस प्रश्न पर दो मत नहीं हो सकते। वह प्रथम तलाब, अर्थात् तलब-ए-मुवासिबत करने से पूर्व अपने सूचक से कोई अतिरिक्त प्रश्न पूछना अविवेकपूर्ण समझ सकता है। किंतु एक बार वह पूर्ण हो जाने के पश्चात् वह अपने सूचक से यह अवश्य पूछता कि उसे यह सूचना कहाँ से प्राप्त हुई, सूचना का सही स्वरूप क्या था, कौन-कौन सी संपत्तियाँ विक्रय हुई थीं, प्रतिफल क्या था तथा अन्य संबंधित प्रश्न क्या थे। वर्तमान वाद में जदुनाथ के साक्ष्य के अनुसार वादी द्वारा ऐसा कोई प्रश्न नहीं पूछा गया। अपने मुख्य परीक्षण में जदुनाथ कहता है:—

"उसने (वादी ने) अपने घोड़ेवाले से अपना घोड़ागाड़ी लाने को कहा। उसने जगदंबा बाबू से कहा कि वह तलब-ए-इशहाद करने जाएगा और उनसे साथ चलने को कहा। जब वे टंडम पर चढ़ रहे थे तभी जयप्रकाश नारायण वहाँ से आए। राधा बाबू ने उनसे भी साथ चलने को कहा। उसी रात्रि 8 बजे राधा बाबू मेरे घर आए। उन्होंने मुझसे पूछा कि मुझे विक्रय की सूचना कहाँ से प्राप्त हुई थी।"

इस साक्ष्य से स्पष्ट है कि यद्यपि जदुनाथ उस स्थान पर तब तक उपस्थित था जब तक टंडम लाया नहीं गया तथा वादी और जगदंबा टंडम पर नहीं चढ़ गए और जयप्रकाश नारायण भी वहाँ नहीं आ गए, तब तक वादी द्वारा जदुनाथ से इस संबंध में कोई प्रश्न नहीं पूछा गया। यह ध्यान देने योग्य है कि वादी उसी रात्रि 8 बजे जदुनाथ के घर गया और उससे केवल यही प्रश्न पूछा गया कि उसे विक्रय की सूचना कहाँ से प्राप्त हुई थी तथा यह नहीं पूछा गया कि

कौन-कौन सी संपत्तियाँ विक्रय की गई थीं अथवा वे कितने मूल्य पर विक्रय की गई थीं। प्रतिपरीक्षण में जदुनाथ ने आगे निम्नलिखित कथन किया:-

"जब मैंने यह समाचार दिया तब राधा प्रसाद ने मुझसे यह नहीं पूछा कि मुझे यह सूचना कहाँ से प्राप्त हुई थी, अथवा संपत्तियाँ किसने खरीदी थीं; कौन-कौन सी संपत्तियाँ खरीदी गई थीं अथवा प्रतिफल क्या था।"

जदुनाथ के इस कथित आचरण पर विश्वास नहीं किया जा सकता और सामान्य मानवीय व्यवहार का अनुभव रखने वाला कोई भी तथ्यनिर्धारक न्यायाधीश बिना संकोच इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि घटनाएँ जदुनाथ द्वारा वर्णित प्रकार से नहीं हुई होंगी। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री झा ने तर्क दिया कि वादी के इस मौन की कथित असंभाव्यता अथवा अप्राकृतिकता के आधार पर कोई निष्कर्ष निकालना अनुचित होगा, जब तक उसे यह स्पष्ट करने का अवसर न दिया गया हो कि उसने ऐसा विचित्र व्यवहार क्यों किया। तथापि यह ध्यान देने योग्य है कि जदुनाथ का परीक्षण तथा प्रतिपरीक्षण 9 जनवरी, 1947 को हुआ था, और जब अगले दिन अर्थात् 10 जनवरी, 1947 को वादी साक्षी-पट्ट पर आया, तब उसका परीक्षण करने वाले अधिवक्ता के समक्ष यह तथ्य विद्यमान था कि जदुनाथ के साक्ष्य से यह विचित्र मौन उजागर हो चुका था कि विक्रय की सूचना प्राप्त होने के पश्चात् वादी मौन रहा। उसका कर्तव्य था कि वह राधा प्रसाद से ऐसे आचरण का स्पष्टीकरण प्राप्त करे। किंतु उसने राधा प्रसाद से इस विषय में कोई प्रश्न नहीं पूछा। स्पष्ट कारण यह है कि राधा प्रसाद के पास कोई स्पष्टीकरण नहीं था और अधिवक्ता यह जानते हुए मौन रहा। हमें प्रतीत होता है कि पटना उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायमूर्तिगण वादी के इस आचरण को अत्यधिक महत्व देने में सही थे और जब उन्होंने इस कहानी को असंभाव्य मानते हुए विचारण न्यायाधीश से असहमति प्रकट कर जदुनाथ के साक्ष्य को पूर्णतः अस्वीकार कर दिया, तब वे न्यायोचित थे।

एक अन्य परिस्थिति का भी उल्लेख किया जाना आवश्यक है जिस पर उच्च न्यायालय के निर्णय में ध्यान दिया गया था। वह उस सटीक सूचना के संबंध में है जो कथित रूप से जदुनाथ द्वारा दी गई थी। मुख्य परीक्षण में जदुनाथ का स्वयं का कथन यह है कि उसने "मंझौल स्थित राधा बाबू के घर पर उनसे कहा कि मघरावाली जोगेश्वरी कुमारी ने अपनी मिल्कियत मटिहानी के गजाधर राय को बेच दी है।" प्रतिपरीक्षण में उसने पहले कहा:-

"मैंने जो सूचना दी थी वह इन शब्दों में थी: मघरावाली मुसम्मात अपनी जायदाद बाबू गजाधर सिंह मटिहानी वाले को बेच दिया।" और तत्पश्चात् स्वयं को सुधारते हुए कहा: "बाबू गजाधर सिंह ने कहा कि मघरावाली मुसम्मात की जायदाद खरीद किया।"

कोई भी व्यक्ति अनेक वर्ष पूर्व अपने द्वारा प्रयुक्त सटीक शब्दों को ठीक-ठीक स्मरण नहीं रख सकता और यह कहना युक्तिसंगत है कि इस विषय पर मुख्य परीक्षण तथा प्रतिपरीक्षण में उसके द्वारा दिए गए विवरणों में कोई सारभूत अंतर नहीं था। तथापि यह स्मरण रखना रोचक है कि वादपत्र के कंडिका 4 में यह अभिकथित किया गया था कि जदुनाथ द्वारा दी गई सूचना इस प्रकार थी:-

"कि द्वितीय तथा तृतीय पक्ष के प्रतिवादियों ने इस वादपत्र की अनुसूची-बी में अंकित संपत्तियों को, अन्य संपत्तियों के साथ, प्रथम पक्ष के प्रतिवादी के पक्ष में एक निबंधित विक्रय विलेख द्वारा विक्रय कर दिया था।"

जदुनाथ के साक्ष्य के अनुसार प्रतीत नहीं होता कि उसने तृतीय पक्ष के प्रतिवादियों का विक्रेताओं के रूप में उल्लेख किया था, न ही उसने ऐसा कोई विवरण दिया जिससे यह प्रदर्शित हो कि अनुसूची-बी में अंकित संपत्तियाँ विक्रय में सम्मिलित थीं अथवा यह कि वह निबंधित विक्रय विलेख था।

वादी तथा जगदंबा के साक्ष्य की ओर आते हुए, जदुनाथ द्वारा कथित रूप से दी गई सूचना

के संबंध में हम पाते हैं कि जगदंबा कहता है: "जदुनाथ सिंह ने राधा प्रसाद से कहा कि मधरा की मुसम्मात जोगेश्वरी कुमारी ने मंझौल स्थित अपनी संपत्ति मटिहानी के गजाधर सिंह को बेच दी है।" स्वयं वादी के अनुसार जदुनाथ द्वारा दी गई सूचना यह थी कि गजाधर सिंह ने मधरावाली मुसम्मात से मंझौल की संपत्तियाँ खरीद ली थीं। अनुसूची-बी के परीक्षण से ज्ञात होता है कि जहाँ प्रथम 3 मद मौजा मंझौल की संपत्तियाँ थीं, वहीं चतुर्थ मद बुजुर्गाबाद की संपत्ति थी जबकि पंचम मद मौजा दुंडित की संपत्ति थी। ऐसा मानने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि मद 4 और 5 की इन संपत्तियों को व्यापक अर्थ में भी मंझौल की संपत्तियाँ अथवा मंझौल स्थित संपत्तियाँ माना जा सकता था। इस बिंदु पर जगदंबा के साक्ष्य पर टिप्पणी करते हुए, प्रमुख निर्णय देने वाले न्यायमूर्ति सिन्हा ने अभिव्यक्त किया:-

"वादी के साक्षी संख्या 2 ने कहा है कि जदुनाथ ने वादी से कहा था कि द्वितीय प्रतिवादी ने अपनी मंझौल स्थित संपत्ति प्रथम प्रतिवादी को विक्रय कर दी है। यदि ऐसा है, तो यह समझना कुछ कठिन है कि वे बुजुर्गाबाद अथवा अन्य संपत्ति मदों पर औपचारिकताएँ संपन्न करने क्यों गए, यदि वास्तव में वे गए थे।"

यह विचित्र है कि वास्तव में क्या कहा गया था, इस विषय में स्वयं जदुनाथ तथा वादी और जगदंबा के साक्ष्य में ऐसी विसंगति हो। किंतु यदि जगदंबा का कथन, जिसे स्वयं वादी का समर्थन प्राप्त है, सत्य है, तो इस बात का कोई स्वीकार्य स्पष्टीकरण नहीं है कि वादी बुजुर्गाबाद जाने के विषय में सोचता ही क्यों, जैसा कि वह और उसके साक्षी कहते हैं कि वह गया था।

जदुनाथ, वादी तथा जगदम्बी द्वारा दिए गए इस कथन की विश्वसनीयता की परीक्षा करते समय कि जदुनाथ ने 2 जनवरी, 1944 को वादी को विक्रय के संबंध में सूचना दी थी, विचारण न्यायाधीश का यह कर्तव्य था कि वे इन विभिन्न विचारणीय बिंदुओं को ध्यान में रखते। उन्होंने ऐसा नहीं किया। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश, अपीलीय न्यायालय होने के नाते, विद्वान

विचारण न्यायालय के निर्णय को स्वीकार करने से पूर्व इन प्रश्नों पर विचार करने के लिए कर्तव्यबद्ध थे। अतः यह आलोचना कि उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों का दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण था, पूर्णतः निराधार है। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने उचित रूप से इन बातों को ध्यान में रखा तथा इन विचारणीय बिंदुओं के आधार पर जिस निष्कर्ष पर वे पहुँचे कि विचारण न्यायाधीश द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन त्रुटिपूर्ण था और जदुनाथ सत्यवादी साक्षी नहीं था तथा वादी द्वारा दिया गया यह कथन कि उसे 2 जनवरी, 1944 को जदुनाथ द्वारा सूचना दी गई थी, स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए, वह स्पष्ट रूप से सही है।

एक बार यह निष्कर्ष निकल जाने पर इस आगे के प्रश्न पर विचार करना अनावश्यक हो जाता है कि क्या वास्तव में 2, 3 अथवा 4 जनवरी, 1944 को वादी तथा उसके साक्षियों के कथनानुसार कोई औपचारिकताएँ संपन्न की गई थीं। यदि वे की भी गई हों, तो भी उससे वादी को कोई सहायता प्राप्त नहीं होगी क्योंकि वादी यह प्रदर्शित करने में असफल रहा है कि उसे इसकी सूचना 2 जनवरी, 1944 को प्राप्त हुई थी।

अतः हमारे लिए उस आगे के प्रश्न का निर्णय करना भी अनावश्यक है जो उठाया गया प्रतीत होता है, अर्थात् यह कि यदि दोनों तलाबों अर्थात् तलब-ए-मुवासिबत तथा तलब-ए-इशहाद के संपादन संबंधी साक्ष्य को उसके प्रत्यक्ष रूप में स्वीकार भी कर लिया जाए, तब भी विधि की अपेक्षाएँ पूर्ण नहीं हुई थीं। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वादी यह सिद्ध करने में असफल रहा कि तलब-ए-इशहाद की दूसरी मांग करते समय उसके द्वारा प्रयुक्त शब्द साक्षियों का ध्यान उन विशिष्ट संपत्तियों की ओर आकर्षित करने के लिए पर्याप्त थे, जिनके संबंध में वह अपना पूर्वक्रय अधिकार मांग रहा था। हम इस विषय में कोई मत व्यक्त नहीं करते कि उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायमूर्तिगण का यह दृष्टिकोण सही है या नहीं। हम अन्य दो प्रश्नों पर भी कोई मत व्यक्त नहीं करते, अर्थात् क्या विचारण न्यायालय ने वादी को अपने वादपत्र में संशोधन

कर तौजी संख्या 1130 के 4 आना कुछ हिस्से के स्थान पर, जैसा मूलतः दावा किया गया था, 8 आना कुछ हिस्से के संबंध में पूर्वक्रय हेतु वैकल्पिक प्रार्थना सम्मिलित करने की अनुमति देकर विधि के अनुसार कार्य किया था, तथा यह भी कि क्या वाद का इस कारण विफल होना अनिवार्य था कि तौजी संख्या 1130 के दाखिली ग्रामों के संबंध में पूर्वक्रय हेतु कोई प्रार्थना नहीं की गई थी।

हमारे मत में, वादी यह सिद्ध करने में असफल रहने के कारण कि विक्रय की सूचना उसे 2 जनवरी, 1944 को जदुनाथ द्वारा दी गई थी, उच्च न्यायालय द्वारा वाद को सही रूप से खारिज किया गया। अतः यह अपील भी लागत सहित खारिज की जाती है।

(1) (1909) एल.आर. 36 आई.ए. 85

(1) (1898) आई च. 704, 785

(2) (1947) । ऑल ई.आर. 582, 587। (1) (1955) । ऑल ई.आर. 326।

(2) (1915) आई.एल.आर. 43 कल. 833।

(3) (1950) एस.सी.आर. 781, 784।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।